प्रफुल्ल कोलख्यान

तेरह कठवा

सच क्या है?

बेचन जगे हुए में सपना देख रहा है या यह कि बेचन सपने में जाग रहा है!

रात लगभग आधी से अधिक बीत चुकी है। बाहर सबकुछ लगभग शांत है। यों तो झींगुर की आवाज के साथ कभी-कभी कुत्तों की भौंक सुनाई पड़ जाती है, मगर यह नहीं कहा जा सकता कि बाहर अशांति फैली हुई है। सब कुछ यथा-रीति है। चौथ का चाँद वैसे भी पूरी रात साथ कहाँ देता है। बाहर आसमान पर चाँद नहीं है। अँधेरा है, मगर इतना नहीं कि एक हाथ को दूसरा हाथ एकदम सूझे ही नहीं। सभ्य समाज में कोई भला आदमी अँधेरे को अच्छा नहीं कहता है। लेकिन आदमी के मिजाज का क्या कहना! आदमी की खासियत ही यह है कि उसे परस्पर विरोधी चीजें एक साथ अच्छी लगती हैं। वह अक्सर इन विरोधी चीजों को एक साथ ही हासिल कर लेने की जुगत करता रहता है। कभी वह खुद को पूरी तरह खोलकर अपना रेशा-रेशा उजागर कर देना चाहता है। कभी रोम-रोम को छुपाये रखना चाहता है। कभी-कभी अँधेरा भी अच्छा लगने लगता है। अँधेरे में अच्छी-बुरी सारी चीजें छिप जाती है। आदमी अच्छे और बुरे के बोझ से मुक्त हो जाता है। आदमी अँधेरे को तौलनेवाली एक जोड़ी आँख बन कर रह जाता है। सिर्फ एक एहसास, शुद्ध चेतना मात्र।

बेचन लगातार करवटें बदल रहा है। एक बार उचट जाने के बाद दुबारा उसे नींद नहीं आ रही है। यह न तो सपनों भरी नींद को पसीने से नहा देनेवाली, चिपचिपाहट से दम फुला देनेवाली, उमस भरी बेकल करनेवाली रात ही है और न ही दाँत से दाँत बजा देनेवाली हाड़तोड़ ठंढी पूस की ही रात है। वैसे भी बेचन तो प्रचंड धूप में काम करने का आदी है, गर्मी से उसे कैसी परेशानी! ठंढ की रात में खरपतवार की धुआंती धधक के सामने अपने-आप में सिमट कर रात काट लेने में भी उसे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। नींद की उचाट का कारण कुछ दूसरा ही है बहुत मुश्किल से अब चुल्हे के लिए ही खरपतवार जुगाड़ पाती है मुंगिया। हाँ जाग तो मुंगिया भी रही है लेकिन बेचन की तरह कच्छ-मच्छा नहीं रही है। उसके पास औरत का मन है। काफी धीरज और साहसवाला मन बर्दाश्त करनेनेवाला दुखसह मन उसे बेचन की इस कच्छ-मच्छी से बड़ी कोफ्त होती है। ऐब ही तो है मगर करे भी तो का करे। मरद तो मरद है। निबाहना तो उसको ही है। माथा तो तो उसका वैसे ही गरम रहता है। कुछ

कहो तो शुरू हो जाता है, दे दनादन... दे दनादन! इस वक्त चाहती तो वह भी है कि करवट बदल ले मगर कैसे? बिल्कुल बाप पर गया है भेटना। दो पूर होकर तीन चढ़े हुए भी चार महीना हो गया है। मगर जोंक की तरह चिपका रहता है। मुंगिया की छाती से। रानी बड़ी है अब वह आठ साल की है। अब तक दो और हो गये होते। भला हो फैमिली पलानीवाले डागदर बाबू का डागदर बाबू का। डागदर बाबू का चेहरा मन में तैरते ही उस गहन रात में किसी को न दिखनेवाली मुस्कान उसके चेहरे पर खेल गई। रनिया बीमार पर गई थी। उसी समय गाँव में फैमिली पलानीवाले डागदर बाबू आये थे। गाँव में पैसा नहीं था सो डागदर बाबू ने ही राह निकाली थी। कहा था, फैमिली पलानी करवा लो बीमारी के इलाज का पैसा भी माफ कर देंगे और हमेशा के लिए झंझट भी खतम हो जायेगा। पैसा ऊ सरकार से बूझ लेंगे। मुंगिया को चीर-फाड़ से बहुत डर लग रहा था। वैसे भी, ऐसे मामले में मरद ही फैसला करे तो भला। सो बहुत समझाया मरद को। मगर बेचना ने उसकी बात पर कभी कान ही नहीं धरा। आखिर अपनी मर्दानगी को कुछ हो जाये तो। रिस्क कौन लेगा। बाबू लोग तो हर बात में कहते हैं, सब ठीक है। घबराने की कोई बात नहीं है, मगर भोगना तो बाद में उन लोगों को ही होता है। बाबू लोगों पर तो एक पैसा का भरोसा ही नहीं रह गया है बेचना को। सो वह किसी भी तरह से राजी नहीं हुआ। इधर रनिया का बुखार था कि कमने का नाम ही नहीं ले रहा था। हार कर पैर पटकते हुए निकल गई थी। मर भी जाये तो क्या? औरत जात की जिनगी का क्या? डागदर बाबू ने ऑपरेशन करते समय कहा था, अब तुम सब झंझट से आजाद हो आजादी समझती हो न! बम्हनटोली की कुमिया रानी को देखो कैसी दनदनाती फिरती है, निर्भय होकर। कुमुद इस गाँव की बेटी है। जाने क्या हुआ कि बियाह के दूसरे साल ही एक रात एल्ड्रीन भख लिया। ससुराल से लतियाकर बिदा कर दी गई। बाम्हन की बेटी कहाँ जाती। सो चली आई बाप के कल्ला पर मस्सला पीसने। दुख बर्दाश्त नहीं होने के कारण पाँचवें महीने बाप ने भी खटिया धर लिया। उसका भाई दमोदर, जवान जोरू को घर में छोड़कर चला गया परदेश कमाने। घर में दो-दो जवान औरत। एक विधवा, दूसरी अकेली। उसका बाप रह गया था। बुझे हुए चुल्हे की दबी हुई आग का क्या भरोसा। कब हवा चले और खढ़-अगिन संजोग लग जाये। शुरू-शुरू में तो बहुत हाय-तोबा मचा। पर बाद में गाँव का सोना गाँव की आग में तप कर कुंदन बनने लगा। कुमिया का नाम डागदर के मुँह से सुनकर और आँख में तैरती कूटलिपि। इस कूट लिपि को औरत हुए बिना कोई पढ़ ही नहीं सकता है। इस कूट संदेश पर मुंगिया का मन कटैया के फूल की तरह हो गया था। आपरेशन के बाद उसके मन में बात बैठ गई। बात यह कि उसने अपने भीतर की औरत को मार दिया।

बुढ़वा-बुढ़िया भी जब देखो घुड़क देते हैं कि उसने उनके खानदान के अंकुर को जड़ से उखाड़ दिया, कि उनके खानदान में आज तक ऐसा नहीं हुआ था कभी। बुढ़वा-बुढ़िया की परवाह नहीं करती है मुंगिया। लेकिन बेचन भी तो उसी पर शक करता है। हलाकि इस बारे में कभी कुछ बोलता नहीं है। यह नहीं बोलना ही अखरनेवाली बात है। जो बात हो सो आदमी चिल्ला-चिल्ला कर कह दे तो बात खतम। नहीं मन में गाँठ पड़ जाती है। गाँठ मुंगिया को गाँठ बर्दाश्त नहीं है।

बेचन ने फिर करवट बदली इस बार रहा नहीं गया मुगिया से। सोया हुआ मरद उसे एकदम बच्चा जैसा लगता है। एकदम कोख जाया बच्चा जैसा। धीरे से पूछ बैठी---

----"नीन नहीं होता है का...? "

लंबी साँस छोड़ते हुए बेचन ने कहा—

--- "तुम्मौ तो जगै हुई हो!"

अंधेरे में मुंगिया बिहँस उठी थी। बिल्कुल पौ फटने की तरह। मन में गुदगुदी दौड़ गई थी। मुंगिया के लिए अब तक का जाना-सुना उत्तर था तुम को मतलब हम से...?

आगे बेचन कुछ बोला नहीं तो भीतर से सकपका गई मुंगिया। कभी-कभी बात करना भी कितना मुश्किल हो जाता है। पिछले चार-पाँच दिन से बेचन एकदम गुम्मा हो गया है। कुछ बोलता ही नहीं न रोटी काँच रहने पर, न दाल अनोन रहने पर। एकदम गुम्मा। बतियाता है, मगर बात में कोई लस-फस नहीं। चार-पाँच दिन से घर में कोई कलह नहीं मचा। दो-चार दिन बीच घर में कोई कलह न हो तो मुंगिया का मन कैसा तो हराया-हराया लगने लगता है। बेचन चित्तंग लेटा है। मुंगिया भेटना को दूध पिला रही है। भेटना का चभर-चभर कर दूध पीना मुंगिया को अच्छा लगता है। चभर-चभर की लय पर भेटना की पीठ पर थपकी देते-देते मुंगिया सोचती है। सोचते-सोचते सो जाती है। लेकिन नींद में भी उसे एक दूसरी ही चिंता खाये जा रही है। आखिर हुआ क्या है मरदुआ को। मुआ है भी तो बड़ा शक्की। न जाने किसी से हँसते-बतियाते देख लिया का? राम जाने का सोचता रहता है।

-"हम चाहते हैं अब इस गाँव में न रहें। कहीं और चले जायें। क्या है इस गाँव में? तुमरा का विचार है?"

मुंगिया बेचना की बात सुन कर भीतर से सिहर गई। पहली बार उससे विचार देने को कह रहा था बेचन--

--"अरे हमरा विचार का होगा कवनो पंचायत बैठी है कि विचार बाँचै हम? कि कवनो मुखिया, सरपंच हैं हम? अरे बहिरा कर कौनो देखा नहीं है का? सारी जवानी हम यहाँ माघ की रात में विदापद गावते काट लिये अब बुढ़ापा दलान पर डेरा डाल रही है तो फिर वही धुन! हाय रे दैय्या कहाँ जायेंगे? कहीं नहीं जायेंगे।"

मुंगिया की ई सबसे बुरी आदत है ससुरी बेर-कुबेर कुछ नहीं देखती है। बोलती है तो लगता है कौआ उड़ा रही है-

-- "अरे धुर स्साली खूब मजा देखा है दुनिया का।... तू यहाँ माघ में बिदापद गाती थी तो हम ही कौन ऊहाँ चैत में फगुआ गाते थे... जाना कहाँ है? बस ऐसे ही सोच रहे हैं.. "

बेचन भीतर से बेचैन था। चैन मुंगिया को भी कहाँ। दूध पीते हुए भेटना को लेकर बेचन की ओर पलटी दोनो एक दूसरे से लिपट गये। बीच में भेटना! जैसे पँखुरियों के बीच पराग।

बेचैनी में कही गई बात मरछुलाई होती है। जनमते ही मर जाती है। लेकिन जब आदमी घूम-फिर कर एक ही बात पर पहुँचे तो बात गंभीर हो जाती है। कलकत्ते के झमेले से अब वह बचना चाहता है। वहीं कितनी इज्जत है? जब नहीं गया था, तब नहीं गया था। खटुआ... मेड़ुआ... हिंदुस्तानी... बोका...और न जाने क्या-क्या कहते हैं.... ससुरे टोन मारते हैं। ये लोग सारा जीवन तो रहते हैं यहाँ। तो फिर इन लोगों को इतना लड़का-बच्चा कैसे होता है! फिर खुद ही जवाब देते हैं कि इन लोगों का बाल-बच्चा चिट्ठिये से हो जाता है...। संसार का सारा ज्ञान इन्हीं के पास है...। दूसरे का मजाक उड़ाना तो कोई इन से सीखे...। कुछ कहो तो फिस्स से हँस देते हैं...। नहीं अब कहीं नहीं जायेगा...। भाग कर कहाँ जायेगा भाई...। सब जगह ऐसा ही है...। कहीं भैय्या, तो कहीं... और कुछ...। न... अब कहीं नहीं जायेगा...। बेचन खुद को ही समझा रहा था। खुद को समझाना कितना कठिन काम है!

जब बेचन कलकत्ता गया था कमाने। तब कलकत्ता जाने की बीमारी थी इस इलाके में। जैसे भिंड-मुरैना के आदमी को कुछ भी हो तो खिसियाकर तुरंत बीहड़ में उतर जाता था। इस इलाके से भाग कर लोग अभी भी कलकत्ता आते हैं। मगर अब यह बीमारी नहीं है। पहले बात दूसरी थी। भद्र बंगाली समाज में इज्जत तो क्या थी... हाँ, सत्कार न सही। मगर एक तरह का स्वीकार था। और फिर सबसे बड़ी बात अपने इलाके के लोगों में भी एक तरह का अपनापन था। जो मदद करने की हैसियत में थे उन में सभी तो नहीं पर अधिकांश भाग-भाग कर ही आये थे सो मदद भी करते थे। अब जो मदद करने की हैसियत में हैं उन में से अधिकांश के मन में भगमभाग का कोई दर्द नहीं है। वे यहीं बस-बसा गये हैं। ये लोग किसी की मदद नहीं करते अब। ये लोग ही अधिक मारूख हैं। सच बात यह भी है कि मदद कोई

किसी की करे भी तो क्या करे, जब काम ही नहीं है। काम से बेशी आदमी हैं। बड़े-बड़े लोगों ने काम ही खा लिया। नंगा नहाओ तो निचोड़ो क्या! इसको दो। उसको दो। इसका दो। उसका दो। ले-दे कर वही ढाक के तीन पात। बेचन ने सब से पहले मोटिया का काम पकड़ा था। हट्टा-कट्टा तो था मगर यह काम भी ताकत से नहीं होता है। इल्म से होता है। पहले तो काम सीखने में ही टाइम लग गया। जब कुछ कमाने लगा तो मुंशी-दलाल का पेट भरते-भरते सब बराबर। जब कुछ प्रपंच सीख गया, प्रपंच यानी कमाकर बचाने का तरीका, तो बाप की बीमारी की खबर आ गई। बाप की बीमारी का तो बहाना ही था। गाँव तो वह भी लौटना चाहता था। कुछ दिन के लिए ही सही। रनिया भी चार-पाँच बरस से जादा की ही हो गई होगी। नाम तो वही धरा कर गया था। मगर पता नहीं उसी नाम से लोग उसे पुकारते हैं या दे दिया कोई और नाम। फिर बेटा को तो उसने देखा भी नहीं था अब तक चाहता था मंगला हाट से कुछ खरीद ले, उसके लिए। मगर नहीं हो सका। मुंगिया का बंधक रक्खा करघनी उसके दिमाग में झूलने लगा। फिर रनिया के लिए लो, तो मुंगिया के लिए कैसे नहीं मुंगिया के लिए लो, तो बुढ़िया के लिए कैसे नहीं। फिर बचता है बुढ़वा। बीमार ही सही, कब हंसा उड़ जाये क्या पता! फिर किना-किनाया सब बेकार! मगर जब तक है, छोड़ा तो जा नहीं सकता। और फिर उसी की बीमारी की खबर पर तो जा रहा है। सो न राधा को नौ मन घी हुआ न राधा नाची।

बुढ़वा बीमार जरूर था, मगर इतना नहीं कि आदमी कलकत्ता से दौड़ा चला आये। वैसे भी कोई न कोई बीमारी तो उसके साथ हमेशा लगी ही रहती थी। संतोष सिर्फ इतना ही था कि किसी बहाने चला आया। बिना बहाना के आने से अच्छा तो बहाने से आना था। बुढ़वा भी खुश और उसकी अपनी इच्छा भी पूरी हुई--- जो रोगी को भावै, सो बैदा फरमावै! मगर रामकिशुन बाबू को देखते ही जैसे उसका गुस्सा उठ खड़ा हुआ। चिट्ठी रामकिशुन बाबू ने ही लिखवाई थी। मगर चिट्ठी पाने के बाद से लेकर इसके पहले तक उसे रामकिशुन बाबू का खयाल भी नहीं आया था। उनको देखते ही उसका मन ऐसे बिदक गया। जैसे कुकुरमाछी काटने पर नया बछड़ा बिदक जाता है। एकदम से बिफर पड़ा---

---"का पंड़ी जी केउ वोइसे भी पाती लिखता है कि परदेश में पराने कंठ में आ जाये... बीमार तो बच जाए और अच्छा सिधार जाये.. "

पंडी जी का स्वार्थ रोक रहा था लेकिन कुसंस्कार का क्या करें जब स्वार्थ और कुसंस्कार में टकराव होता है तो बोधवान का स्वार्थ और अबोध का कुसंस्कार जीतता है।

'--- 'अरे ससूर न राम न सलाम...अब तुम हम को सिखलायेगा पाती लिखना...दस दिन में हालत सुधर गया तो खुश न होना चाहिए... कि उलटे रिसिया रहा है... जो पूत परदेश गया ऊ ससूरे जब देव की ही परवाह नहीं करते तो पितर की कौन पूछे..."

दोनो ऐसे गुजर गये जैसे विपरीत दिशा से आती ट्रक तेज हार्न के साथ एक दूसरे को बचाती हुई गुजर जाती है।

बेचन का बाप बड़े गर्व से कहा करता है। रामकिशुन पंडी जी के बाबूजी, बुढ़वा मालिक बड़ा अच्छा आदमी थे। अक्सर कहा करते थे---

---"हमरा दू बेटा है ... एग्गो रामकिशुन और एग्गो कुंतलवा ..."

इतना कहकर लंबी उसाँस लिया करता था कुंतलवा, यानी बेचन का बाप कुंतल मुखिया। अपनी पूरी जवानी मय बीवी-बच्चे , खटिया-पटिया लगा दिया पंडी जी की सेवा में। गाँव में कभी किसी के यहाँ चाकरी नहीं की। जो मिला अपने दरबार में उसी पर संतोष किया। जीवन भर अब तो जीवन की साँझ है। मगर बेचन को यह सब बहुत बुरा लगता है। कई बार इस बात पर कहा-सुनी हो जाती थी बाप से। जिस दिन वह कलकत्ता रवाना हुआ था उस दिन भी इसी बात पर ले-दे हो गयी थी। बात यह थी कि बेचन हरखू चौधरी का खेत जोतने चला गया था। रामकिशुन बाबू के यहाँ कभी सीधे मुहँ मजूरी मिलती नहीं थी। जबकि हरखू चौधरी, दो छटाक कम ही दे मगर देता था टटका। मुंगिया पेट से थी और गरम जलेबी खाने का उसका मन बहुत भरछता था। सो भीतरी बात यह थी कि उस शाम वह किसी भी कीमत पर पाव भर जलेबी का जुगाड़ कर लेना चाहता था। नगद देकर, उधार नहीं। हरखू चौधरी के यहाँ एक दिन काम कर लेने से ही यह संभव हो सकता था। पंडी जी तो अपनी आदत के अनुसार टरका ही देते। अब यह बात वह बुढ़वा को कैसे समझाता। इधर रामकिशुन बाबू अपने काम के बिथुत हो जाने से उतने परेशान नहीं थे, जितने बेचन के इस आचरण में छिपी अपनी अवहेलना से। सो कुंतल मुखिया को उलाहना दे गये थे। यह बात बुढ़वा को लग गई थी। वह बेचन के लौटते ही उस पर झपट पड़ा था---

"अरे सस्सूर... कुत्ता भी एक मालिक का पोस मानता है... और तू पंडी जी का नागा कर चला गया हरखू चौधरी का खेत जोतने..."

कहते हैं, खेत से छुटे हलवाहे और बैल को नहीं टोकना चाहिए। लेकिन कहने से क्या होता है। बाबू-भैय्या ही नहीं मानते। कुंतल मुखिया तो ठहरे बाप। बेचन पैना को चार की ओलती में खोंसते हुए भभक उठा था।

"कुत्ता पोस मानता है तो तू पोस मान ..."

बस इत्ती-सी बात थी। पर बुढ़वा ने रो-धो कर दस समाज इकट्ठा कर लिया, रो-रोकर सब को बता रहा था। हम को आने-माने लगा कर कुत्ता कहता है... हलांकि यह कोई अनहोनी घटना नहीं थी वहाँ के लिए। मगर लोगों को तो मौका मिलना चाहिए। इतना भला-बुरा कहा कि आखिर में उसका मन टूट ही गया। और चल पड़ा था कलकत्ता की ओर...
कुंतल मुखिया ने तब सगही को कहा। कहा क्या अपने-आप बड़बड़ा रहा था।
--"अच्छा हुआ चला गया हिंया से...ऊ ई गाँव में मन मार कर रहे से मुश्किल बात...ससूर भरल पेट मौगी को छोड़ गया हमरे कपारे... जाने क्या होगा... आखिर पहलौट है... आदमी ऊ जो बूझे... आज साठ बरस से बुझिये तो रहे हैं भैय्या... मगर सब बुझौनी तो कंचा पर होता है... कंचा पर... बूझ जायेंगे ससूर... आज अगर हमरा जनमा होता तो का ई दशा करके चला जाता हमरा..."

मुंगिया न चीख पा रही थी, न रो पा रही थी। लछमिनियां पहले तो कुछ बोली नहीं। बेचन को गोद में लाई थी। बेचन मुखिया का अपना जनमा नहीं था तो क्या हुआ। बुढ़वा को मानता तो अपने सगे बाप से अधिक था। आज पहली बार मुखिया के मुँह से ऐसी बानी सुनकर लछमिनियां को अपनी कोख में काँटा उगने जैसा मारक एहसास हुआ। मन में बात तो हवा गोला की तरह उठी कि कह देवे दम ठोककर कि अपन खास मौगी से जनमल कोनो अपने होता है का... उसे भी इसी गाँव में बसते-बसते बीस बरिस हो गये... किस जाति और किस बरन के बारे में... किसके बारे में क्या नहीं जानती है वह। मगर जो कह देती तो कितनी बड़ी बात होती! सो उसने बस इतना ही कहा----"भीखना तो अपने जनमल है फुलेसरा के तो काहे बपै को लतियाते रहता है गेन की तरह ... "

मुखिया समझ गये कि बात भीतर तक लग गई है लछमिनियां को, सो चुपा गये।
खाँटी डेढ़ कोस पक्की जमीन है टेसन। नौ बजिया पकड़नी है। इसके पहले एक बार बस एक बार कलकत्ता गया था घूमने-फिरने। तब की बात और थी लंबा-लंबा डेग भरते हुए बेचन चला जा रहा है। उसकी चाल में निश्चय और संकल्प का बल है। दिमाग उससे भी तेज चल रहा है उसका। ऊ गाड़ी है कि रोड धर कर ही चलेगा... शाटकट से चलेगा तो कम-से-कम पाव भर जमीन तो जरूरे कम हो जायेगा...। फिर सेठ के यहाँ भी समय लगेगा... वह भी तो देखेगा... कुल तीन सौ रूपल्ली भी देदे तो वह कलकत्ता पहुँचकर मजे में टिक सकता है... बल्कि आराम से पहुँच जायेगा... बस नंबर तो याद नहीं लेकिन किसी से पूछ लेगा राजाबाजार ....फिर फूलबागान... उसके बाद तो वह पैदल भी रपेट देगा... लेकिन अगर जो सेठ माल रखने और पैसा देने में आनाकानी करे। याकि भेटैबे नहीं करे तो क्या होगा...। बस

यहीं से उसके मन की गति में फिर एक पेंचदार मोड़ आ जाती है और सबकुछ गडमडाने लग जाता है। बीच-बीच में कुरता की जेब टटोलकर देख लेता है। मन थिर होता है तो फिर तरह-तरह के विचार। माँगते तो का मुंगिया ना कर देती...। बाप ने दिया है चाँदी है, तो का... वह कोई उसे बेचने-बिकिनने जा रहा है...। बंधक ही तो रखेगा बैजनाथ सेठ के यहाँ...। बड़े-बड़े बाबू लोग चुपके से बंधक रख आते हैं ...और जिनिस होता किसलिए है...। घर के बाकस में नहीं रहा सेठ की तिजोरी में रहा...। क्या फर्क है...। लेकिन माँग के लेना चाहिए था। मगर होश कहाँ था उसको और नहीं तो क्या कोई इस अवस्था में वोइसे धकियाता है। जो होगा सो होगा... ई एग्गो बड़ा जुलूम हो गया उससे... उसे मुंगिया के पेट की याद आ गई तो उसका मन अलग तरह के एहसास से भर गया। वह लौट जाना चाहता है। मुंगिया के पास। मगर वह हार मानना नहीं चाहता है। वह अब कलकत्ता जायेगा जरूर। अरे बेटा और लोटा तो बाहरे जने पर चमकता है। संतोष की बात यही है कि आते समय चिल्ला-चिल्लाकर सब के सामने कह दिया था कि वह कलकत्ता जा रहा है....

इधर गाँव में मजदूरों की कितनी कमी होती गई है। है न मजे की बात। देश में बेरोजगारी बढ़ रही है। गाँव में मजदूर कम हो रहे हैं। किसानी के समय तो एकदम अखरने लगता है। कलकत्ता तो पहले ही इनके लिए मामा गाँव था अब नयी बीमारी बंबई-दिल्ली-पंजाब की लग गई है। एक जत्था आता है। दस-पाँच उसमें से रह जाते हैं। नया जत्था जाता है। दस-बीस नये लोग संग हो लेते हैं। आने-जाने का यह खेल चलता रहता है। जो बच जाते हैं सो ऐंठरोप इतने कि पूछिये मत। कानून तो इतने जान जाते हैं कि वकालत कर लें। वहाँ जा कर पता नहीं क्या-क्या करते हैं। मगर यहाँ कानून ऐसा बघारते हैं कि... बड़े-बड़े फेल कर जाएँ इनके सामने। यही सब गुन-धुन करते हुए चले जा रहे थे रामकिशुन बाबू। सामने से आते हुए दीख गये कुंतल मुखिया। एक सकेंड में रामकिशुन बाबू के दिमाग में एक योजना कौंध गई। दुआ सलाम के बाद उन्होंने मन को दुखी बनाते हुए अपनेपन की चासनी में लपेटकर कहना शुरू किया—

"अब कैसन मन रहता है कुंतल मुखिया... जवान लरिका रनबन भटक रहा है तो कइसन मन रहेगा... ई हम समझ सकते हैं... मगर करें तो करें का...। अब बच्चा रूठ कर गया है तो वोइसे ही तो आ नहीं जायेगा। मनाना तो होगा ही। लरिका तो हीरा है। बस जमाना ही बदल गया। तुम कहो तुमरा बीमारी के नाम पर एग्गो पाती भेज दें तो लरिका तो अइसन हीरा है कि दौरा चला आयेगा---"

कुंतल मुखिया चुप ही रहे।

मौन स्वीकृति लच्छनम का सिद्धांत लगाकर मन ही मन मुदित हो गये रामकिशुन बाबू---

---"गाँव-घर में कभी यह बीमारी थी ही नहीं..."

बसहा की तरह मूड़ी डुलाता रहा कुंतल मुखिया। आगे रामकिशुन बाबू ने भेदिये आवाज में कहना शुरू किया---

---"'गाँव में राति सब मजूरन की मिटिन है... वोह में जाना है न हो मुखिया"

खबर कुंतल मुखिया को थी। वह उसमें जाना भी चाहता था। मगर एक प्रकार का अचिन्हा डर भी उसके मन में कहीं-न-कहीं कुंडली जमाये बैठा था। सो उसने साफ स्वर में मना कर दिया---

---" पंडीजी हम को तो कवनो खबर नहीं है। और खबर हो भी तो हम वहाँ जाकर क्या करेंगे। जो हवा है सो खतरनाक है मालिक...।"

मालिक शब्द पर रामकिशुन बाबू का ध्यान गये बिना नहीं रहा। आचरण में कभी कुंतल मुखिया रामकिशुन बाबू के प्रति मालिकपने से मुक्त नहीं हो सका था। मगर शब्द में यह संबोधन कम ही आकार पाता था। ऐसे संबोधन के बाद रामकिशुन बाबू सावधान और संयत हो जाते थे। माहौल भारी-भारी हो जाता था। क्षण की चुप्पी तोड़ते हुए कुंतल मुखिया ने कहा---

---"भोट के टैम आ गया है...सो अब मिटिन-सिटिन तो होएगा ही ..."

पंडी जी चाहते थे, कुंतलवा मिटिंग में न सिर्फ जाये बल्कि वहाँ से लौटकर पक्की खबर भी दे। आखिर वहाँ हुआ क्या और आगे क्या होना है। मगर कुंतल मुखिया के सावधान होने को भाँपकर यह बात कैसे उसे कहें। हवा चलती है तो हर किसी को लगती है। जिस खतरनाक हवा की ओर कुंतल मुखिया इशारा कर रहा है वह हवा तो तो अपने होने से ही कुंतल मुखिया और रामकिशुन पंडीजी दोनो को झकझोर रही है। उनके संबंध में भी एक प्रकार का नया आयाम जाने-अनजाने जुड़ ही गया है। संबंध धीरे-धीरे अनुमुखी की जगह प्रतिमुखी होने की ओर ही बढ़ रहा है। यह बढ़ना खतरनाक है। इस हवा को झेलने के लिए मन से न तो कुंतल मुखिया जैसे लोग तैयार हो पा रहे हैं और न ही रामकिशुन पंडी जी जैसे लोग। मगर हवा चल रही है। कहीं हरदेपुरा की तरह इस बार यहाँ भी हुड़दंग मची तो बजाते रहिये झाल। जो हो रामकिशुन बाबू चाहते हैं कि कुंतल मुखिया उस मिटिंग में जाये जरूर। फिर एक बार में न सही धीरे-धीरे उसके मन से वहाँ हुई कार्रवाई का मर्म तो वे आँक ही लेंगे। इसलिए बड़े आग्रह के साथ प्रेमपूर्वक कहना शुरू किया---

---" न हो मुखिया जाना जरूर चाहिए...। इन लोगो का तो माथा खराप हो गया है... जहाँ देखो तहाँ कनफुसकी... कुछ-न-कुछ खरजंत्र-खुराफात सोचते रहता है... एकदम हवा ही पलट गया मुखिया..."

लौटकर कुंतल मुखिया ने बताया---

--- "पंडीजी हम को तो सब बात यादे नहीं रहती है...। मगर ऊ नन्हकुआ और उसके साथ एक और आये थे। कह रहे थे कि गाँव-गाँव से भाग-भाग के लोग पंजाब जाते हैं... बंगाल जाते हैं... कुछ काम करते हैं... और बेशी आदमी मारे-मारे फिरते हैं... मार दिये जाते हैं... अपना मुलुक छोड़कर काहे चले जाते हैं... यहाँ काम नहीं है...? मगर असल बात है कि इज्जत नहीं है... कुछ कहो... हक की बात तो जान से मुआ दिया जाता है...। अपनी बहु-बेटी पर तो सात ताला का पहरा बिठाये रहते हैं और दूसरे ....। करता है कोई भरता है कोई। पुलिस जाल में फँसा शंकरबा... तिलकबा... शनियां... बोधा... काहे का अपराध था उनका...! सब बाबू-भैय्या दबा के रखना चाहते हैं...। पैर के नीचे...। देश आजाद हो गया बहुत पहले। हमलोगन को लेकिन अभी भी गुलाम बना के रखा गया है। रामदयाल, सिधेसर बाबू का बड़का लड़का राँची में उनियन करता है। कहता है हम मजूर हैं। अपना हक लड़कर लेंगे। दुनिया के मजूरो एक हो। यहाँ उसका पूरा खानदान आँख दिखाता है। इनकी तरह हम यहाँ बराबरी में बैठें तो गजब हो जाय। इनकी इज्जत माटी में मिल जाये। हमारी बराबरी से इनकी हेंठी होती है...हेंठी... बराबरी बर्दाश्त नहीं होती है... "

रामदयाल का प्रसंग कुंतल मुखिया चबा जाना चाहता था। वह जानता था रामदयाल का नाम सुन कर पंडीजी भीतर से तड़तड़ा जायेंगे। मगर उसने कह दिया तिमिलाएँ जरा ऊ भी। हरदेपुरा में रामकिशुन की लड़की बसती है। सिद्धेश्वर बाबू उनके खास समधी तो नहीं हैं। मगर रसूखवाले आदमी हैं। परिवार का परिचय उन्हीं के नाम से चलता है। आगे रामकिशुन पंडीजी को कुछ सुनना बाकी नहीं रह गया था। तम-तमाकर उन्होंने जाते हुए फिकरा कसा---

---"बड़े-बड़े को लंगोट नहीं और कुत्ता माँगे पजामा...."

असल बात तो कुंतल मुखिया ने कही ही नहीं। उसे भी बड़ा अच्छा लगा था। लड़कों के साथ-साथ वह भी जवान हो गया था। इजोरिया रात में गानाबजाना। गाना भी ऐइसन कि `कारी-कारी देहवा प लाले-लाले अँचरा कि केसवा नगिनिया से लटकल फूल~~~ उठान मारे नदिया के प्रान~~~ ।' ऐसा गाना कि आल्हा फेल। जैसा पहले सुराजी गाते थे। कुंतल

एकदम झूम-झूम उठा था। आजादी के पहले की बातें याद हो आई थी। तब वह दस-बारह बरस का रहा होगा। गाँधी महात्मा खुद कभी इस गाँव में आये नहीं। पर नेता लोग आते ही रहते थे। सिर्फ अमरनाथ का नाम उसे याद है। जबारे के हैं। पहली बार इधर से भोट में वही नेता उखड़े थे। मंत्री भी हुए थे। पहले तो बराबर आना-जाना लगा रहता था। मगर सुराज के बाद आना-जाना वैसा नहीं रहा। धीरे-धीरे कम होता चला गया।

उस मिटिंग में कुंतल मुखिया का जाना वैसा ही था, जैसे कैद में जनमे बच्चे का बालिग होकर अपने समाज में आना।

इधर गाँव की हवा बदली। रामकिशुन बाबू ने कुंतल मुखिया की बीमारी का बहाना बनाकर बुला लिया बेचना को। तेवर ठीक नहीं है तो क्या हुआ। आ गया है तो फिर तुरंते चला तो नहीं जायेगा। थोड़ा मिठास देकर बात करेंगे। मजूरी देते तो हैं ही। समय पर टटके दे दिया करेंगे। असल में पिछले साल जो हरदेपुरा में हुआ, वह कम भयानक नहीं था। दोष सिद्धेश्वर बाबू का भी कम नहीं था। मगर खुले महाभारत में कोई उनको कहे भी तो कैसे! अपनी सनक में वे सुनते भी किसकी हैं...। अरे बड़े-बड़े को इन लोगों ने नाथ दिया है। अभी से होशियार न होएँ तो अपनी ही इज्जत खराब होनी है। होशियार रहना ही ठीक है। आदमी वही है जो हवा पहचाने। यही सब सोचते हुए रामकिशुन बाबू सड़क पर आ गये।

इस बीच बेचन की महतारी लछिमिनियां को साँप ने काट खाया। ओझा-गुनी हाथ पटकते-पटकते रह गये। मगर, हुआ कुछ नहीं। गाँव के डोका डाक्टर ससुराल गये तो दस दिन से शायद वहीं पड़े हुए थे। कहाँ थे किसी को मालूम नहीं। ससुराल भी कोई एक हो तो खोजे! कहाँ हैं किस को मालूम! बेचन चाहता था कि शहर के किसी बड़े डाक्टर के पास उसको ले जाये। चाहता था मगर पास में पैसा नहीं था। शहर के डाक्टर के पास जाने के लिए टेंट में जोर तो चाहिए ही! सो पैसा तो रामकिशुन पंडीजी से ले लेता। कितना मीठा-मीठा तो बतियाते रहते हैं हरदम। ऐसा तो होता नहीं कि उनकी संदूकची में पैसा धरा रह जाये और उसकी माई दू खुराक दवाई के लिए दुनिया ही त्याग दे। मगर लोगों ने अजनबिया के गुन का इतना बखान किया, इतने सारे उदाहरण दे डाले और यही बकते रहे कि जो होना होगा यहाँ भी होगा और शहर में भी होगा। विधना के विधान में कौन दखल दे सकता है। होनी हो सो होय। मुंगिया को छाती कूटने से ही फुरसत नहीं हुई। जैसे छाती कूटने से ही जहर उतर जायेगा। और इस कोलाहल के भँवर में मरल सुग्गा की तरह ऊभ-चुभ करता नि:शब्द खड़ा रहा उसका बाप कुंतल मुखिया। उसको कुछ करते नहीं बना। पसीना पोछते हुए अजनबिया ने एलान किया---

---“बुढ़िया को भुतसंप्पा घर लिया था... एकदम जबर्दस्त भुतसंप्पा... उसका मारा कोई बचता है का..“

किरिया-करम के दिन तक रोज एक बार रामकिशुन बाबू हाल-चाल पूछ जाते। कुंतल मुखिया को ढाढ़स बँधा जाते। बुढ़िया से बड़ा लाग तो कुंतल मुखिया को। नारायणपुर से सगाई करके लाया था। साथ में बित्ता भर का बेचना था। प्यार से लछिमिनिया कहने लगा तो आज तक बूढ़े-बच्चे सभी लछिमिनियां ही कहते हैं। किसी को माँ-बाप का दिया उसका असली नाम मालूम नहीं। कैसा सराप था कि कुंतल मुखिया से उसको हुई तो चार संतान मगर बची एक भी नहीं। सब समय से पहले कालकवलित।

किरिया-करम से फारिग हुआ तो बाढ़ आ गई। वर्षा तो कोई खास नहीं हुई थी। बाढ़ खूब जोरदार थी। इतनी जोरदार की ऊपर आसमान में हेलीकॉप्टर उड़ने लगे। सड़कों-बाँधों के ऊपर से उड़ते हुए हेलीकॉप्टर को निहारते समय लोग इतने कुतूहल से भर जाते कि जमीन और अपनी दुर्दशा का कोई ख्याल ही नहीं रह जाता। सब जानते हैं, बाढ़ बनावटी है। नेपाल ने पानी छोड़ा है। कितने नेपालियों की लाशें बहकर बाढ़ में आई। कितने देसी बह गये। कितने तो भूख से मर गये कोई हिसाब नहीं। ठीक ही है जब रोटी आकाश लगी हो, तो जिसकी जितनी ऊँचाई। बाबू-भैय्या अपने कोठे पर बैठकर समाचार सुनते कि कहीं उनके गाँव का नाम आ जाये। स्वयंसेवियों में ही नाम आ जाये। बीडिओ साहब को बड़े लोग सब मिलकर खबर तो भिजवाई है। बीडिओ है तो खानदानी, मगर सरकारी काम का तो अपना तरीका होता है।

बेचन ने बहुत काम किया। कई की जान बचाई। कई के सामान। फिर भी बहुत का बहुत कुछ बह-भसिया गया। सब से कठिन दृश्य था, कुमिया का बचना। बेचन की आँख में रह-रहकर लौट आता है। वह दृश्य जैसे घर के पिछवाड़े बैठा रहता है। जब-तब मन में हुलकी मारने लगता है। हहाते हुए पानी में बही जा रही है कुमिया। ऊभ-चुभ उसको बचाना अपने को डुबाने जैसा ही था। नन्हकुआ का ध्यान उधर गया तो ऊ ऐसे छपाक से पानी में कूद गया जैसे आग लगी मकान से कोई कूद जाता है। अपना प्राण लेकर पाँच-दस मिनट की जी तोड़ कोशिश के बाद ही तो कुमिया को गोद में उठाये लौट आया था खुशी से भरा हुआ नन्हकुआ। जैसे रामजी ने शिवधनु उठा लिया हो। उसकी गोद में ऐसी समाई थी कुमिया जैसे कोख में समाया रहता है बच्चा। एक तरफ बाढ़ का पानी और दूसरी तरफ कुमिया की अधखुली आँख की कोर से ढरकते आँसू। उस आँसू की भाखा कौन पढ़े। जो पढ़े सो ज्ञानी होए। जनम कृतार्थ हो जाये। दोनो तरफ पानी-ही-पानी। पानी से लड़कर पानी को बचा लिया था नन्हकुआ ने। नन्हकुआ वीर है। ज्ञानी है। उसका जनम कृतार्थ है। मान गया बेचन। नन्हकुआ...

रमलोचना... कपिलेसरा... रधवा... जिन-जिन के बारे में सुनता था कि एक नंबर के लफंगे हैं, उन सब के साथ काम करते-करते बेचन एकदम उनमें घुल-मिल गया...। इस तरह कि कि उन्हीं में से एक होकर रह गया बेचन।
बाढ़ का पानी नीचे उतरा तो बाढ़ की कहानियाँ ऊपर चढ़ने लगी। नन्हकुआ कहता है---
"सब का हिसाब लिया जायेगा... अरे हम मरे नहीं हैं कि कौआ आँख निकाल ले जाये..."

ये बातें सुनने में तो बेचन को ठीक लगती है, मगर न जाने क्यों कलेजा धक-धकाने लगता है।

उसे पहले की सुनी बातें याद आने लगती है। और वह एकदम डर जाता है मार-पीट, मानुष वह कोई भी क्यों न हो उसकी हत्या की सोच से भी वह बहुत घबड़ाता है।
रोपनी शुरू हो गई है।
रामकिशुन बाबू ने एक दिन बड़े प्यार से पुचकारते हुए बेचन से कहा---
---" परसों हल पकड़ने का मुहुरत है...हमरा पहला हल तुमरे खानदान के हाथ से खेत में जाता है और निबाहते भी तुम्हीलोग हो... ई तो तुमको सब मालूमे है... इस बार बुढ़वा माटी नहीं उठा पायेगा... तुम क्या करोगे सो तुम्हीं जानो... पहलेवाली बात नहीं है... नहीं तो हाथ पकड़ के कहता कि रे बेचना परसों आ जाना समय पर... तुमलोग नया सोच के हो... खैर, जो करना हो मन बता देना बाबू... सोच लो... कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं.."
बेचन एकदम से पन्हाई गाय की तरह शांत खड़ा रहा। बिना हिले-डुले। मन ही मन रामकिशुन बाबू खुश थे। वैसे इस गाँव में अभी तक कुछ हुआ नहीं है अब तक। हाँ, नन्हकुआ का आना-जाना काफी बढ़ गया है, सो पता नहीं कब क्या हो जाये...

मैया के मरने पर बड़ी मदद की रामकिशुन बाबू ने, बेचना को याद है। फिर पीछे से बुढ़वा यहीं रहेगा। मुंगिया रहेगी। दूग्गो बालबुतरू है। आखिर बेर-कुबेर के बास्ते कोई-न-कोई भरोसा तो चाहिए कि नहीं...। पंडीजी का मन खटा जाये उसकी ओर से यह किसी प्रकार से ठीक नहीं होगा---
---"नहीं मालिक पहले अपना काम है फिर दुनिया जहान है...हमरे खानदान का काम है सो ई तो हमरा हके है... हम परसों समय पर चले आयेंगे..."

शायद पहली बार, हाँ पहली बार बेचन ने रामकिशुन बाबू को मालिक कहा था। रामकिशुन बाबू क लिए यह विश्व विजय से कम आनंददायक नहीं था। यह आनंद छिपाये नहीं छिप रहा था। उनके आनंद विभोर मन को पढ़कर अपने इस व्यवहार पर अपने ही प्रति घृणा से भर

गया था बेचन का मन। जैसे पहली बार शराब की गंध से आदमी को होता है। फिर शायद कृतज्ञता बोध ने उसे उबारा। और उसके मन पर गुलामी का नशा छाता चला गया।
जब से बुढ़िया मरी है बुढ़वा एकदम से गिर ही गया। खाना भी खाता है तो लगता है कुल्हाड़ी चला रहा है। इधर रोपनी पूरी चढ़ान पर थी। उधर दो-तीन दिन के ज्वर के बाद एक दिन बुढ़वा भी लुढ़क गया। रामकिशुन बाबू को इस समय बुढ़वा का मरना बहुत अखर गया।

'अब ई सस्सूर किरियाकरम करेंगे... हमरा तो हो गया बंटाढार... '

तभी रामकिशुन बाबू के सामने बिजली कौंधी। अरे वाह एक पंथ दूई काज। काज भी छोटा-मोटा नहीं---

---"अरे भाई बेचना तू कैसे किरिया-करम करेगा... धरम शास्त्र कुछ है कि सब बिला गया देस से... तू तो कुंतल मुखिया का बेटा नहीं है... यह सब जानते हैं... बित्ता भर का था जब तुमको ले कर लछिमिनियां आई थी इस गाँव में। तुम से भी छिपा नहीं है। ऐसा अनरथ कैसे होगा। कुंतल मुखिया तो निपूता था। मानने से क्या होता है! अपना आखिर अपना होता है। देखो बेचन... दुनिया आनी-जानी है... एक धरम ही इस अथिर संसार में थिर है... धरम के बल पर ही दुनिया टिकी हुई है... है कि नहीं...। कुंतल मुखिया ने अपने जिंदा रहते तुमको जितना लाड़-प्यार दिया। इसका बदला तुम उसका धरम रछा कर चुका सकते हो। अपना धरम भी बचा सकते हो। आगे तुम जानो और तुम्हार धरम जाने। हमरा काम है चेताना। चेता दिया"

पंडीजी को डर है कि कहीं जो नन्हकुआ को खबर लग गई तो कोई-न-कोई अड़ंगा अवश्य लगायेगा। उनके मन में ऐसे समय में संस्कृत के प्रति बड़ी श्रद्धा जग जाती है। भीतरी बात यह थी कि बुढ़वा के नाम से तेरह कट्ठवा खेत था। वैसे खेत में जमीन तो अब तीन कट्ठा ही है। मगर नाम उसका अभी भी तेरह कट्ठवा ही है। इस तीन कट्ठे की जमीन पर पंडीजी की नजर है। पंडी जी मन ही मन अति प्रसन्न हैं कि इधर बेचना वारिस नहीं है। और उधर प्रसिद्ध सूत्र भी है ` पिंडं दद्वा धनं हरेत' । डर है तो बस यही कि नन्हकुआ का आना-जाना बहुत बढ़ गया है...
दीनुआ जो कल ही पंजाब से लौटा है तीन हाथ कूद गया---
--- "पंडी जी अब हम लोगों को शास्तर मत पढ़ाइये...जिसे पढ़ने का हम को अधिकार ही नहीं है ...उसे मनवाने की जबर्दस्ती मत कीजिये..."

गाँव दो खेमे में बँट गया। एक तरफ दीनुआ है। दूसरी तरफ पंडित रामकिशुन। तनाव काफी बढ़ गया। पंडीजी को तो इसी का डर था। ऊपर से नन्हकुआ वैशाखी बतास की तरह आ गया। चतुर पंडी जी ने समझने में देर नहीं की। उन्होंने एलान कर दिया---

--- "हम न तो नन्हकू से कुछ कहेंगे न दीनुआ से ...और कहें भी क्यों ऊ हमरा है ही कौन... हम को जो कहना है सो हमने बेचना को कह दिया अपना आदमी जानकर आगे जैसा उसका धरम ... इससे बेशी और कुछ नहीं कहना है हमको..."

इधर बाप की लाश पड़ी है उधर शास्त्रार्थ हो रहा है। बेचन को याद है जब उसकी माई मरी थी तो सिरिफ रामकिशुन पंडीजी ही उसके पास खड़े हुए थे बाकी सब तो अजनबिया का तमाशा देख रहे थे। लेकिन रामकिशुन पंडीजी की आँख में एक बूँद ही सही मगर आँसू देखा था बेचन ने। अपनी आँख से। उसका पूरा मन ही बदल गया था। लेकिन पंडी जी का अभी का व्यवहार उसकी समझ से परे था। पंडी जी जब तुनक कर जाने लगे तो बेचना भोकासी पार कर रोने लगा---

--- "पंडी जी बीच भँवर में हम को छोड़कर मत जाइये... आप जो कहियेगा वही होगा... मगर अभी बुढ़वा का लहाश उठ जाने दीजिये... जमाना जो कहे, कहने दीजिये... बाप तो हमरा मरिये न गया पंडी जी... शासतर जो कहे लेकिन बाप के असथान पर तो हम कुंतले मुखिया को जीवन भर देखते रहे हैं... ई तो मनेंगे... और अब तो अपना कहने के लिए आप ही बचे हैं... माई-बाप जो समझिये..."

इस बात से रामकिशुन बाबू का मन एकदम पानी की तरह हो गया।

यह सब हो ही रहा था कि कहीं से उड़ते-उड़ते नन्हकुआ आ गया। भीतर-भीतर तो उससे सब घबड़ाते हैं। सब फिराक में रहा करते हैं कि कैसे मौका पाकर उसको लुढ़का दिया जाये। मगर सामने सब सटक सीताराम। आखिरकार शास्त्रों के पन्ने बंद हुए और सभी इस बात पर सहमत हो गये कि कुंतल मुखिया का किरिया-करम करने का अधिकार बेचन को है। अब एकांत पा कर रामकिशुन बाबू बेचन को समझाया---

--- "देख बेचना धन-दौलत सब आनी-जानी है... मगर बाप का सराध करने का मौका फिर-फिर नहीं आता है जीवन में... अरे हमरा का है... हम कवनो एक मुट्ठी भात भी खायेंगे... खायेगा तो सब तुमरा जाते-बिरादर... तब है कि बुढ़वा की आतमा तिरपित होगी... पैसा-कौड़ी का चिंता नहीं करना है... जब कमाओगे तब देना... बस किसी से कहना नहीं कुछ... हमरे-तुमरे ईमान से बढ़कर कुछ नहीं है..."

सिर्फ कहा ही नहीं पंडी जी ने साढ़े तीन हजार दिया भी। बेचन पतित होने से बच गया। बुढ़वा का आतमा तिरपित हो गया। कोई कुछ कहे, पंडी जी का उपकार वह जीवन भर नहीं भूलेगा।

धान पकने पर आ गया। धान क्या है। सब मरी हो गया। जो भी है किसान की लछमी तो वही है। अब पंडी जी जब मिलते हैं बेचन को बड़े प्यार से समझाते हैं----

---"कहीं बहिराने का विचार त्यागो... यहीं रहो... भेटना की माई को अकेले असगर छोड़कर कहीं जाना उचित नहीं होगा... दूग्गो छोटा-छोटा बुतरू है तुम्हारा... कौन देखेगा... और एक बात तगादा मत समझना मगर निआव का बात... कुछ इधर-उधर का मामला होता तो कोई बात नहीं लेकिन बुढ़वा के सराधवाला जो बकियौता है सो तो तुमको आज न कल चुकाना ही है... मान लो हम माफे कर दिये तो का हुआ, है तो देव-पित्तर का मामला... हम माफे करनेवाले कौन हैं... आखिर जब संसार से जाओगे तो उहाँ पितर को क्या मुँह दिखाओगे... और यह तुम्हारे पुरूसारथ पर भी तो कलंके होगा... सब से अच्छा रास्ता है ऊ तीन कट्ठा का जो तेरह कट्ठवा है चुपचाप हमरे नाम लिख दो... तुमरा करज भी चुक गया और समझो हमरा फरज भी पुर गया... और ऊ नन्हकुआ से बचके रहो ...ऊ सस्सूरे का कौन है आगे-पीछे... न जात न धरम... न कोई रोनेवाला न कोई धोनेवाला... उसके संघत में दिमाग खराप होने के अलावा कुछ नहीं होगा... आज न कल तो उनको बलि चढ़ना ही है... बुरा लगा हो तो माफ करना... कुंतल मुखिया को हम अपना सगा भाइये मानते थे... सो चेता दिया... आगे तुम जानो और तुम्हारा धरम जाने।"

बेचन का दिमाग भोथ रखा है। पंडी जी की और सब बात ठीक है। मगर तीन कट्ठा जमीन साढ़े तीन हजार में! यह बात उसको अखर रही है। वैसे भी जमीन तो जमीन है कोई साग-सब्जी तो है नहीं कि टोकरी में उठाये और चल दिये। इस बाजार नहीं, उस बाजार। जहाँ कीमत मिले वहीं बेचेंगे। इस अकाल में गरजू की जमीन की वाजिब कीमत देने की दयानतदारी कौन दिखायेगा! फिर किस में इतनी कुव्वत है। किसकी ऐसी नीयत होगी। बेचन के मन में बात धँस गई। आखिर में ई जमीन उससे सम्हलेगी नहीं। कहीं ऐसा न हो जमिनवो हाथ से निकल जाये और करजा भी सिर पर चढ़ा रह जाये। ई बतिया तो ठीके है कि सराध का पैसा अगर नहीं चुकाया तो बहुत बड़ा पाप होगा। ना-ना-ना ऐसा सोचना भी पाप है। महापाप। पंडी जी के सामने नत हो गया बेचन---

--- "पंडी जी किसी दिन चलिए। हम को इस बोझ से मुक्ति दे दीजिये..."

पंडी जी तो पहले एकदम घबड़ा ही गये पता नहीं क्या चाल हो। इन पर आँख मूँद कर विश्वास तो नहीं किया जा सकता है। आज करो सो अब करो का सुमिरन करते हुए भी पंडी जी सावधान हैं---

--- "देखो बेचन कोई जल्दबाजी नहीं है ठंढ़ा दिमाग से सोच लो... लगे कि पंडी जी साढे तीने हजार में सोना का टुकड़ा हड़प रहे हैं तो छोड़ दो भैय्या... हम संतोख कर लेंगे... हम सूद-ऊद की बात नहीं करते हैं... लेकिन सोचो ई जमीन तो कायदे से तुमरा है भी नहीं... कानून तो हम-तुम नहीं बनायेंगे न... मन में कोई बात हो तो रहने दो हमही संतोख कर लेंगे लेकिन किसी झमेले में नहीं पड़ना चाहते हैं हम... जमाना ही खराब हो गया किसी का उपकार करो और ऊपर से झमेला मोल लो... सो क्या जरूरत है..."

पंडी जी की इस बात से बेचन का मन और बेचैन हो गया---

---"नहीं पंडी जी जाने बाबा बैदनाथ हमरा मन में कुछ नहीं है अब जैसे भी हो इस झमेले से हम को छुटकारा दीजिये... जिनगी का क्या भरोसा है..."

पंडी जी का मन तो फूल कर खेसारी हो गया।

नन्हकुआ की गोद में समाई कुमिया की अधखुली आँख की कोर से ढरकते आँसू। उस आँसू में भीतर तक भींगकर पवित्र हुआ नन्हकुआ का मन। बेचन के अंदर सुगबुगा रहा है। धीरे-धीरे उसे रह-रहकर बाप की याद आ रही है। ताड़ी के नशे में चूर हो जाने पर कहता था बुढ़वा---

--- "रे बेचना...रे जब तक मालिक मलिकार गरिआओत रहे तब तक समझो सब ठीके है... और जहाँ आदर से कहे कुंतल मुखिया... समझो भारी भीतरघात... होशियार एकदम होशियार... सावधान-सावधान कि अपटी खेत में फँसल परान..."

जैसे कुंतल मुखिया की आत्मा ही याद के दायरे से निकलकर सामने आ गई। वह धीरे-धीरे निष्कर्ष पर पहुँच गया---

--- "न चाहे चला जाये परान... रूठ जायें देवपित्तर भगवान... वह नहीं करेगा... नहीं करेगा धरती का अपमान... आखिर धरती भी माई ही तो है... वह सकेगा तो कमा कर चुका देगा सारा करजा... कोई पाप नहीं है उसके अंदर। वह तेरह कठवा की रक्षा जरूर करेगा। जरूर।"

जब आँख खुली तो सूरज डेढ़ हाथ ऊपर चढ़ आया है। वह रात के निष्कर्ष को मन ही मन दुहराते हुए झोल से भरे छान को देख रहा है। छान की भुरकी से आती हुई रोशनी में झूलता हुआ झोल किसी भयानक जंतु की तरह लग रहा है जिससे खेल रहा है भेटना। न सबसे पहले यह झोल झाड़ेगा। बुदबुदाते हुए उठ खड़ा हुआ बेचन। चेहरे पर एक अर्थपूर्ण मुस्कान के साथ। सामने खड़ी मुंगिया के लिए यह अद्भुत दृश्य है। वह अपने जीवन में आज पहली बार बेचन मुखिया का रूप-गंध-एहसास को महसूस कर रही है। महसूस कर रही है और धीरे-

धीरे उस रूप-गंध-एहसास की तरफ बढ़ रही है। उधर जैसे नन्हकुआ की गोद में समाई कुमिया की अधखुली आँख की कोर से ढरकते में भीतर तक भींगकर पवित्र हुआ था नन्हकुआ का मन उसी तरह पवित्र हो रहा है बेचन मुखिया का मन मुंगिया को इस तरह अपनी ओर आते देखकर।